© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

प्राचीन भारतीय कृषि के चतुर्दिक विकास में यंत्र के रूप में हल का योगदान : एक समीक्षात्मक विश्लेषण

सत्येन्द्र कुमार सिंह
शोध छात्र
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारत में कृषि यंत्र के रूप में हल का प्रमाण पुरातात्विक साक्ष्यों से भी पुष्ट होता है क्योंकि हल प्रायः लकड़ी के बने होते थे।[1] आज भी उत्तर प्रदेश के गढ़वाल और हिमांचल प्रदेश के किन्नौर के कुछ क्षेत्रों में चीड़ की लकड़ी से बने हल वाले फालों के प्रयोग होते हैं।[2] अतः लकड़ी का इतने दिनों तक सुरक्षित रहना संभव नहीं है परन्तु कुछ ऐसे प्रमाण उपलब्ध है जिनसे यह प्रमाणित होता है कि भारत में पाषाण काल के उत्तरवर्ती चरणों से ही कृषि कर्म में हल का प्रयोग होता आ रहा है। मध्य प्रदेश के चतुर्भुज नाले से प्राप्त शैलचित्रों में हल को बैल से जोड़कर जुताई करते दर्शाया गया है।[3] इस चित्र में दो जोड़ी बैल दो हलों से सम्बद्ध हैं जिन्हें दो व्यक्ति संचालित कर रहे हैं। दोनों व्यक्तियों के हाथ में बैलों को नियंत्रित करने के लिए पैना है। दो बैल एक हल के साथ जुए से जुड़े हुए है। इसके अतिरिक्त पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न के प्रमाण भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारत में पाषाण काल से ही कृषि कर्म हो रहा है। काल्डिहवा[4] एवं लहुरादेया[5] से प्राप्त प्रमाणों पर गौर करें तो भारत में आठवीं–सातवीं सहस्त्राब्दी से ही कृषि कर्म होने का प्रमाण मिला है।

कृषि कार्य प्रारम्भ होने के साथ ही आवश्यकतानुसार समय–समय पर अनेक यंत्रों–सयंत्रों की खोज की गई। जिनमें हल संयंत्र का प्रमुख स्थान अब भी विभिन्न स्वरूपों में यथावत बना हुआ है। इस सयंत्र का विकास कैसे हुआ ? यह कहना कठिन है। प्रारम्भ में मुक्त हाथों से कृषि कार्य सम्पन्न किया जाता रहा होगा। कालान्तर में छोटे–छोटे उपकरण भी कृषि में प्रयुक्त होने लगे होंगे किन्तु बढ़ती जनसंख्या, सभ्यता के विकास की प्रवृत्ति आदि ने हल संयंत्र के आविष्कार में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया होगा।

यह निश्चित है कि 3000 ई0पू0 के आस–पास इसका प्रयोग मेसोपोटामिया व भारत में हो रहा था। सम्भवतः इसका अविष्कार इससे बहुत पहले हो गया होगा। हल का विकास कुदाली से हुआ होगा। आरम्भ में बीज बोने के लिए नदी के किनारे की नरम मिट्टी में कुदाली से छेद कर दिए जाते थे और उसमें बीज वपन

किया जाता था। जैसे–जैसे कृषि कर्म का विकास हुआ फलतः अधिक भूमि की आवश्यकता हुई, जिस वजह से नदी के किनारे से दूर जाना पड़ा, जहाँ भूमि इतनी मुलायम नहीं थी और इसके लिए कुदाली से खुदाई करना आवश्यक हुआ होगा इस कार्य को और सरलता से करने के लिए तरीके का प्रयोग कर कुदाली की मूठ को दोनों ओर बढ़ा दिया गया होगा। उदाहरण के लिए मिस्र की समाधियों से प्राप्त चित्रों में ऐसे चित्र मिले है, जिनमें मूठ को एक व्यक्ति खींच रहा है, जबकि एक दूसरा व्यक्ति अपने हाथों से कुदाल दबाये हुए है।[6] इस तरह का आशय भूमि को अधिक गहराई तक जुताई करना रहा होगा। कालान्तर में जब कृषि क्षेत्र का और अधिक विस्तार हुआ, जनसंख्या में वृद्धि होने लगी और उत्पादन करने का दबाव बढ़ा, तभी से कुदाली को और परिष्कृत कर हल का रूप दिया गया होगा। बाद में जुए के अविष्कार के साथ इसे पशुओं से जोड़कर खींचना आरम्भ हुआ होगा और इस प्रकार कृषि कर्म में उपयोग आने वाले महत्वपूर्ण कृषि संयंत्र के रूप में हल का विकास हुआ होगा।[7]

सिंधु सभ्यता से भी कृषि कर्म में प्रयुक्त हल संयंत्र के प्रमाण मिले हैं। मोहनजोदड़ों से पत्थर के तीन ऐसे उपकरण मिले हैं जिनके आकार–प्रकार और भारी होने से इनके शस्त्र के रूप में प्रयुक्त होने की सम्भावना कम लगती है। इन्हे कुछ लापरवाही के साथ बनाया गया है। एक 25.91 सेमी लम्बी 8.13 सेमी से लेकर 10.92 सेमी तक चौड़ा और 5.33 सेमी मोटा है। दूसरा 25.15 सेमी लंबा 7.62 सेमी से 10.52 सेमी चौड़ा और 3.55 सेमी मोटा है। तीसरा कुछ टूट गया है। ये तीनों पर्याप्त भारी है। ऐसा सुझाव दिया गया है कि ये सभी हल के फाल थे।[8]

कालीबंगा में विकसित सिंधु संस्कृति से पूर्व की संस्कृति के संदर्भ में नगर की सुरक्षा दीवार के बाहर जुते हुए खेत के चिह्न मिले हैं। इस खेत में सीते दो दिशाओं में है पूर्व–पश्चिम और उत्तर–दक्षिण। ये सीते पूर्व–पश्चिम में 30 सेमी की दूरी पर और उत्तर–दक्षिण दिशा में 1.90 मीटर की दूरी पर हैं। जुताई की यह विधि आज तक हरियाणा, राजस्थान, पश्चिम उत्तर प्रदेश में प्रचलन में है इसमें दो तरह के अनाज को एक साथ बोया जाता है जैसे एक दूसरे से कम दूरी वाले सीतों में चना और अधिक दूरी वाले सीतों में सरसों, ताकि सरसों के पौधों की छाया चने के पौधों पर न पड़े। हड़प्पा सभ्यता में जो, उससे भी अधिक विकसित थी, निश्चय ही हल का प्रयोग होता रहा होगा।[9] मोहन जोदड़ों से एक संदिग्ध टूटा माडल मिला जो हल का है।[10] बानावली से हल का मिट्टी से बना एक सुरक्षित माडल मिला है जो आज के हल से बिल्कुल भिन्न नहीं है।[11] हल के उपरोक्त स्पष्ट प्रमाणों के अतिरिक्त उत्खनन से मिले गेहूँ, जौ आदि खाद्यान व मोहनजोदड़ों और हड़प्पा से बड़े–बड़े अन्नागार यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि विकसित कृषि उपकरण के बिना इतना उत्पादन सम्भव नहीं था। हल निश्चित रूप से यहां कृषि के महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में बड़े पैमाने पर प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त उ0प्र0 के एटा जिले के अतरंजिखेड़ा नामक स्थान से चित्रित धुसर मृदभाण्ड

स्तर से हल में लगाया जाने वाला लोहे का फाल मिला है जो 1200 बीसी का है।[12] रामशरण शर्मा ने एटा जनपट में जखेरा से प्राप्त हल के फाल का उल्लेख किया है जिसे लगभग 500 ई0पू0 का माना जा सकता है।[13]

वैदिक साहित्य हल के प्रमाणों से भरे पड़े हैं इनमें हल के लिए लागल, सीर,[14] हलि,[15] जित्य,[16] आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है, अतः इस काल में कृषि के महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में हल का विशिष्ट स्थान था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में लिखा है कि अश्विन देवताओं ने मनु को हल चलाना सिखाया और यव की खेती करने की शिक्षा दी।[17] अथर्ववेद में एक स्थल पर कहा गया है कि रोग के शमन में लिए वृषभ युक्त हल तथा उसके काष्ठ युक्त अवयवों को नमन है। अनुवांशिक रोग को विनष्ट करने वाली औषधि आपके क्षेत्रिय रोग को विनष्ट करें।[18]

नमस्ते लांगलेभ्यो नम ईषयुगेभ्यः।

वीरूत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।। – अथर्ववेद 2.8.4

यहाँ हल जुओं एवं हरस की मजबूती के लिए प्रार्थना करने का यह तात्पर्य निकलता है कि खेत की मिट्टी सम्भवतः कड़ी रही होगी और खेत जोतने के साथ हल प्रायः टूटता रहा होगा। कई विद्वान इसका अर्थ लगाते है कि वैदिक कृषकों को लोहे की जानकारी नहीं थी और वे लकड़ी के फाल का ही इस्तेमाल करते थे किन्तु यह सत्य नहीं है। ऋग्वेद के प्रस्तुत ऋचा से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि हलों के फाल शुद्ध लोहे से बनाये जाते थे एवं टूटने पर उनको फिर–फिर बनाया गया था।

इन्द्रः सीता निगृहणातु तांपूषाऽनु यच्छतु।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुन्तरां समाम।।

अर्थात् इन्द्रदेव हल की मूठ संभाले पूषादेव उसकी देखभाल करे, तब धरती श्रेष्ठ धान्य तथा जल से परिपूर्ण होकर हमारे लिए धान्य आदि का दोहन करें।[19]

उत्तरवैदिक साहित्य में हल के सम्बन्ध में बैलों की संख्या पर अधिक जोर दिया गया है और चार से लेकर चौबीस बैलों तक के एक हल में जोते जाने के उल्लेख आते हैं।[20] अथर्ववेद[21] एवं काठक संहिता[22] में इस बात का उल्लेख है कि हलों में आठ, दस, बारह और चौबीस तक बैल जोड़े जाते थे। हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन इंडिया में डॉ0 एम0एस0 रन्धावा ने लिखा है कि वैदिक समय में किसानों द्वारा प्रति हल आठ बैल लगाये जाते थे जब उनसे दिन भर काम लिया जाता था। छह बैलों के जुते होने पर तीन चौथाई दिन चार बैलों के जुते होने पर आधा दिन एवं दो बैलों के जुते होने पर सिर्फ एक चौथाई दिन ही काम लिया जाता था।[23]

मनुस्मृति में लकड़ी में लोहे के फाल (काष्ठमयोमुखम्) लगे हुए हल से खेती करने की सूचना मिलती है।[24]

अत्रि एवं पराशर के अनुसार जो व्यक्ति प्रति हल आठ बैल लगाता है वह धर्मात्मा जो प्रति छह बैल लगाता है वह व्यापारी, जो प्रति हल चार बैल लगाता है वह निर्दय और जो प्रति हल दो बैल लगाता है वह गोमांस भक्षक है। इस पर रांधवा का मानना है कि संभवयता पहले के बैलों की नस्ल कमोर रही होगी या खेती की मिट्टी भारी रही होगी या फिर हलों में इतने बैलों को जोड़ने की कला उन्हें ज्ञात थी। और इतने बैलों से कोई भी भारी हल चलाया जाता रहा होगा।[25]

पाराशर के अनुसार हल के आठ भाग होते है[26]–

1. **ईषा या हरीस–** (Pole) यह पांच हाथ लम्बी लकड़ी होती है जो हल को जुए से जोड़ती है।
2. **युग या जुआ–** (Yoke) जो बैल के कन्धों पर रहती है। इसकी लम्बाई चार हाथ की होती है और इसके ठीक बीच में 15 अंगुली का आबन्ध होता है जिसमें ईषा का बांधा जाता है। इसी से सटे 5 हाथ की लम्बी रस्सी, जिसे नाधा कहते है बांध जाता है। इस नाधा से बैल की गति एवं दिशा को नियंत्रित किया जाता है।
3. **निर्योल–** यह हल का वह भाग होता है जिसमें एक ओर फाल लगा होता है और इसके दूसरे किनारे तक हरीस और हलस्थानु जुड़े रहते हैं। इसकी लम्बाई डेढ़ हाथ होती है। फाल की लम्बाई एक हाथ या एक हाथ पांच अंगुली होती है।
4. **हलस्थाणु–** यह हल का वह भाग होता है जिसका एक किनारा निर्योल से जुड़ा होता है और दूसरा किनारा किसान द्वारा हल पकड़कर हल चलाया जाता है। इसकी लम्बाई ढाई हाथ होती है।
5. **निर्योल–पाशिका–** यह लोहे की पत्ती होती है जो फाल को हल के साथ जोड़ती है इसकी लम्बाई 11–12 अंगुली (9 इंच) होती थी।
6. **अचल्ल–** युग के किनारों पर बने छिद्रों में जाने वाली छोटी लकड़ी जिसके साथ बैलों को बांधा जाता है। जो 11–12 अंगुली होती है।
7. **साउल–** छोटी सी लकड़ी जिसे निर्योल के छेद में ईषा या हरीस के साथ डालकर कसा जाता था। इसकी लम्बाई करीब एक हाथ होती थी।
8. **पच्चनी–** यह एक प्रकार की छड़ी होती है जिससे बैल हांका जाता था। इसे पैना भी कहते है।

बृहस्पति के अनुसार यदि कोई व्यक्ति कृषि से सम्बन्धित उपकरणों को तोड़ता है तो ऐसे व्यक्ति पर 100 पण या इससे भी अधिक आर्थिक दण्ड लगाना चाहिए।[27] बृहस्पति के ही अनुसार इसके फाल का वनज बारह पल, लम्बाई आठ अंगुल तथा चोड़ाई चार अंगुल होनी चाहिए।[28] इसी प्रकार अमरकोष में भी हल के अनेक भागों का उल्लेख मिलता है[29]– हरीस, जुआ, सइल या सैला, फार या हल

कौसमस ने लोहे के बजाय गैंड़े के चर्म से निर्मित हल के फालों का उल्लेख किया है। यद्यपि कौसमस का यह विचार तत्कालीन साक्ष्यों से पुष्ट नहीं होता तथापि डॉ0 एस0के0 मैटी का मत है कि इसे सर्वथा असम्भव भी नहीं कहा जा सकता है। इसकी पुष्टि में उन्होंने यह तर्क दिया है कि एक तो इनके चमड़े की मोटाई लगभग 2 से 3 इंच होती है और दूसरे यदि इन्हें अच्छी तरह सुखा दिया जाये तो ये किसी भी धातु से कम कठोर एवं मजबूत नहीं हो सकते, परन्तु किसी ठोस प्रमाण के अभाव में कोसमस के इस विचार को एक अनुमान ही समझा जा सकता है।[30]

जैन ग्रंथ निशीथ चूर्णी में हल की तीन कोटियाँ बतायी गई हैं हल, कुलिय और दतालक। इसमें कुलिय सम्भवतः घास काटने वाला एक काष्ठ औजार था, जिसकी लम्बाई लगभग दो हाथ तथा धार तिक्ष्ण लोहे की होती थी।[31]

पाणिनी ने हल का बार–बार उल्लेख किया।[32] कालान्तर में हल धीरे–धीरे कृषि का प्रतीक बन गया। हलभर की खेती, हलिकाकर जैसे अनेक संदर्भ अभिलेखों में खेती के उचित आयाल और कुछ करो के नामरूप से आते है।[33] अष्टाध्यायी में लोहे के फाल को आयोविकार कुशी नाम दिया गया है।[34]

बौद्ध ग्रंथ सुत्तनिपात के तत्कालिक सूत्त की भूमिका में लोहे के फाल के दिनभर आग में तपाने और पुनः उसकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए उसे बुझाने, (पानी में डालने) पर एक बड़ी आवाज करने का उल्लेख है।[35] जातकों (सं0 167) से यह ज्ञात होता है कि वर्ष के विशेष दिनों पर राजा भी हल चलाते थे।[36] पालि साहित्य में हल को नाड्गल कहा गया है और इसके नाम पर सुत्तनिपात में इच्छा नाड्गल नामक एक गांव का भी उल्लेख है। सुत्तनिपात से ज्ञात होता है कि कसि भारद्वाज नामक ब्राह्मण अपने सुदीर्घ खेतों को पांच सौ हलों द्वारा बोते समय जुतवाता था।[37]

कसिभारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य पच्चसन्तान–

नड्गलसतानि पयुन्तानि होन्ति वप्पन काले।

हल के साथ पशु रूप में प्रायः बैलों का ही प्रयोग होता था। किन्तु कुछ विद्वान जैसे डॉ0 यज्ञनारायण अय्यर का कथन है कि हलों में अश्वों का प्रयोग भी होता था।[38] राजस्थान व हरियाणा क्षेत्र में आज भी हल में ऊंटों को एक सुदूर पूर्वी भारत के कुछ क्षेत्रों में भैसें को भी जोड़ा जाता है।[39] खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख`में गधों से हल चलाये जाने का उल्लेख मिलता है।[40]

दखिन दिसं मंद च अव राज निवेसिचं पीथुण्ड गदभनंगलेन कासयति।

अतः यह कहा जाता है कि हल को बैल, ऊंट, अश्व, भैसों तथा यदा–कदा गधे भी खींचा करते थे।

हल का कृषि में महत्वपूर्ण योगदान होने के कारण ही इसका प्रारम्भ से ही धार्मिक महत्व भी रहा है। गृहसूत्रों ने गृह सम्बन्धी सभी धार्मिक संस्कारों और पूजा सम्बंधी कार्यों में उसके किसी न किसी भाग का

आंगन में स्थापन और पूजा अनिवार्य बना दी। धीरे–धीरे कृषि कार्यों के वार्षिक प्रारम्भ के समय उसकी (हल) की पूजा का विधान भी प्रचलित हो गया।[41] गोभिल गृह्यसूत्र 'हलाभियोग' अर्थात् हल चालने के साथ कृषि से सम्बन्धित कुछ और यज्ञों को भी गिनाया है।[42] महाकाव्यों में वर्णित प्रत्येक यज्ञ समारम्भ के लिए अनिवार्य रूप से यज्ञ भूमि का हल से शोधन इस उदाहरण के महत्व को और भी स्पष्ट कर देता है। रामायण में राजा जनक यज्ञ विधान के अन्तर्गत हल चलाते हुए दिखाई देते है, और वहीं पर उन्हें अपनी पुत्री सीता की प्राप्ति होती है।[43] महाभारत में राजा दुर्योधन भी वेष्णव यज्ञ के समय हल द्वारा यज्ञ भूमि का विलेखन करते हुए देखे जाते हैं।[44] हमारे आदर्श पुरुषों में बलराम को तो हलायुध कहा ही जाता है, साथ ही कृष्ण भी स्वयं को भू–कर्षण (कृषि कर्म करने वाला व्यक्ति) कहने में अपना गौरव समझते है।[45] महाकाव्यों के इन उदाहरणों में कृषि के लिए हल की उपयोगिता एवं महत्व तो स्पष्ट होता ही है साथ ही यह भी विदित होता है कि राजाओं और महापुरुषों द्वारा हल चलाने के उदाहरणों ने उन दिनों जनमानस को अत्याधिक प्रभावित किया होगा। आज भी हिन्दू परिवार में विवाह संस्कार के समय हल के हरिष का प्रयोग किया जाता है जो प्राचीन काल का ही प्रतीक रूप में संरक्षित वही परम्परा है।[45]

इस प्रकार उपरोक्त विवरणों का अध्ययन करने के बाद हम कह सकते है कि कृषि के विकास में अन्य कृषि उपकरणों की अपेक्षा हल अपने अविष्कार से लेकर आज तक अपनी महत्ता बनाये हुए है और कृषि कर्म में अपनी भूमिका का महत्वपूर्ण निर्वाह कर रहा है।

संदर्भ–ग्रन्थ :

1. डॉ0 अच्छे लाल, प्राचीन भारत में कृषि (प्रा0 काल से 650 ई0 तक), सिद्धार्थ प्रकाशन, वाराणसी, 1980, पृ0 33
2. पाठक, वी0एस0, प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास (प्रारम्भ से 600 ई0 तक), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, 2004, पृ0 131
3. दूबे, सीताराम, प्रागैतिहासिक शैलचित्र एवं उनमें प्रतिबिम्बित लोक संस्कृति, संस्कृति साधना, भाग–20, 2007
4. पंत, पी0सी0, विश्व परिप्रेक्ष्य में प्रारम्भिक कृषक : कुछ जिज्ञासायें, प्राग्धारा, अंक–18, उत्तर प्रदेश, राज्य पुरातत्व संगठन, लखनऊ
5. वही
6. पंत, रजनीकांत, प्राचीन सभ्यताओं में विज्ञान एवं तकनीक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007
7. वही

8. थपल्याल, के0के0 एवं संकटा प्रसाद शुक्ल, सिन्धु सभ्यता, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, उ0प्र0, 2003, पृ0 202
9. वही
10. वही
11. वही
12. पाठक, वी0सी0, प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास (प्रारम्भ से 600 ई0 तक), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, उ0प्र0, 2004, पृ0 128
13. राय, जयमल, प्राचीन भारत में कृषि, रजत प्रकाशन, गोरखपुर, 2010, पृ0 81
14. डॉ0 अच्छे लाल, प्राचीन भारत में कृषि (प्रा0 काल से 650 ई0 तक), सिद्धार्थ प्रकाशन, वाराणसी, 1980, पृ0 62
15. वही
16. वही
17. झा, रागिनी एवं रत्नेश कुमार झा, संस्कृत साहित्य और कृषि विद्या, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2009, पृ0 25
18. शर्मा, श्रीराम, अथर्ववेद संहिता भाग–1, ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज, हरिद्वार, उत्तरांचल, 2002
19. वही
20. शर्मा, श्रीराम, ऋग्वेद संहिता भाग–2, ब्रह्मवर्चस, शांतिकुंज, हरिद्वार, उत्तरांचल, 2002
21. झा, रागिनी एवं रत्नेश कुमार झा, संस्कृत साहित्य और कृषि विद्या, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2009
22. वही
23. वही
24. राय, जयमल, प्राचीन भारत में कृषि, रजत प्रकाशन, गोरखपुर, 2010, पृ0 111
25. वही
26. पाराशर, कृषि–संग्रह, श्लोक 110–118
27. राय, जयमल, प्राचीन भारत में कृषि, रजत प्रकाशन, गोरखपुर, 2010, पृ0 113
28. वही, पृ0 110
29. शास्त्री हरगोविन्द, अमरकोष, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, आफिस वाराणसी, 2005, पृ0 310–311
30. डॉ0 अच्छे लाल, प्राचीन भारत में कृषि (प्रा0 काल से 650 ई0 तक), सिद्धार्थ प्रकाशन, 1980, पृ0 170
31. वही
32. वही
33. वही

34. वही
35. वही
36. वही
37. वही
38. वही
39. सम्बन्धित क्षेत्रों के लोगों से बातचीत पर आधारित
40. गुप्त, परमेश्वरीलाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग–1, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0 96
41. पाठक, वी0एस0, प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास (प्रारम्भ से 600 ई0 तक), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, उ0प्र0, 2004
42. जोशी, नीलकण्ठ पुरूषोत्ततम, स्मृतियों में कृषि प्राग्धारा, अंक 4, उ0प्र0 राज्य पुरातत्व संगठन की शोध पत्रिका, 1993–1994
43. उपरोक्त, पृ0 114
44. वही
45. वही
46. उत्तर भारत खासकर मध्य गंगाघाटी में विवाह के समय आंगन में बांस के साथ हल के हरीष को भी बांधकर उसकी पूजा की जाती है।